माहेश्वर अक्षरसमाम्नाय का आध्यात्मिक स्वरूप

डॉ.सत्यप्रकाश दुबे, आचार्य, संस्कृत-विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर

मन्द-मन्द स्फुरत्तन्त्रीं निहन्त्रीं सकलापदाम्।
स्फालयन्तीं मतिप्राप्त्यै सारदां शारदां नुमः।।

साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप पुरुषार्थों में मोक्षतत्त्व की ही प्रधानता स्वीकार की है। वह मोक्षतत्त्व आदिपुरुष के निःश्वाससन्ततिसङ्कलन रूप वेद के सम्यक् अर्थबोध से ही सम्भव है। वह वेदार्थबोध भी '**अयं शब्दः इममर्थमवगमयति अस्य शब्दस्यास्मिन्नर्थे शक्तिः**' रूप से शक्तिग्रह के अधीन है और वह शक्तिग्रह **शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान .....** रूप से वृद्धजनवचनपर्यालोचनपूर्वक व्याकरणशास्त्र के अधीन है- यह निश्चित होता है।

'सर्ववेदपारिषदं हीदं शास्त्रम्' वचन के अनुसार लौकिक-वैदिक उभयविध शब्दराशि को साधुत्वासाधुत्वविवेचनपूर्वक व्याकृत करने वाले अनेक प्रकार के, अनेक प्रकार से तथा अनेक आचार्यों द्वारा ग्रथित व्याकरणग्रन्थों में पाणिनीय व्याकरण ही मूर्धन्य है। इस पाणिनीय व्याकरण का मूल आधार अक्षरसमाम्नाय रूप से प्रसिद्ध शिव प्रसाद से अधिगत चतुर्दश माहेश्वर सूत्र हैं जो इस प्रकार हैं –

१. अइउण् २. ऋलृक् ३. एओङ् ४. ऐऔच् ५. हयवरट् ६. लण् ७. ञमङणनम् ८. झभञ्
९. घढधष् १०. जबगडदश् ११. खफछठथचटतव् १२. कपय् १३. शषसर् १४. हल्।।

यद्यपि शाकटायन ने ऋक्तन्त्रव्याकरण में इन चतुर्दशसूत्रों की परम्परा पर चिन्तन करते हुए कहा है-

''**इदमक्षरच्छन्दो वर्णशः समनुक्रान्तं यथाचार्या ऊचुर्ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच बृहस्पतिरिन्द्रायेन्द्रो भरद्वाजाय भरद्वाज ऋषिभ्यः ऋषयो ब्राह्मणेभ्यस्तं खल्विममक्षरसमाम्नायमित्याचक्षते न भुक्त्वा न नक्तं प्रब्रूयाद् ब्रह्मराशिः**''। तथापि कलियुग के प्रारम्भ में तपश्चरणरत पाणिनि की व्याकरणशास्त्रविषयकप्रवृत्ति हेतु तथा '**तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति**' श्रुति वचन के आधार पर सनकादि सिद्धों के आत्मविद्या के बोध

के लिए ढक्कानिनाद के व्याज से उन सभी को भगवान् महेश्वर ने उपदेश किया, ऐसा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों से स्पष्ट होता है।

अथर्ववेद में प्राप्त होने वाली अनुबन्धरहित यह ब्रह्मराशि भगवान् शिव के द्वारा सानुबन्ध बनायी गयी। फलतः यह ब्रह्मराशि महेश्वर से आगत है– यह बात सर्वथा सिद्ध होती है। यहाँ यह भी अवधेय है कि वेदों के अपौरुषेय होने से यह ब्रह्मराशि आगत रूप है न कि महेश्वरकृत है।

इस चतुर्दश सूत्र रूप ब्रह्मराशि का **वृत्तिसमवायार्थ अनुबन्धकरणार्थ** और **इष्टबुद्ध्यर्थ** के साथ आत्मविद्यासम्प्राप्ति रूप आध्यात्मिक प्रयोजन भी है जो '**उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धान्**' वचन से स्पष्ट है। यहाँ प्रसङ्गवश गुरूपदिष्ट अध्यात्मपरक विवेचन ही प्रस्तुत है –

'अइउण्' आदि चतुर्दश सूत्रों के आविर्भाव और उनके अध्यात्म तत्त्व से सम्बन्धित विस्तृत चिन्तन नन्दिकेश्वरकृत काशिका में किया गया है जिनकी व्याख्या करते हुए प्रस्तावना रूप में उपमन्यु ने कहा है –

इह खलु सकललोकनायकः परमेश्वरः परमशिवः सनकसनन्दन–
सनत्कुमारादीन् श्रोतॄन् नन्दिकेशपतञ्जलिव्याघ्रपाद् वसिष्ठादीन् उद्धर्तुकामो
ढक्कानिनादव्याजेन चतुर्दशसूत्रात्मकं तत्त्वमुपदिदेश। तदनु ते सर्वे मुनीन्द्रवर्याः
'चिरकालमाश्रितानामस्माकं तत्त्वं चतुर्दशसूत्र्यात्मकमुपदिदेश इति मत्त्वा 'अस्य सूत्रजालस्य
तत्त्वार्थं नन्दिकेश्वरो जानाति' इति तं नन्दिकेश्वरं प्रणिपत्य पृष्टवन्तः। तेषु पृष्टवत्सु स
षड्विंशति कारिकारूपेण तत्त्वं सूत्राणामुपदेष्टुमिच्छन्निदमाचष्ट–

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।

सनक–सनन्दन और सनत् कुमार मुनियों एवं गुरुपरम्परा से श्रवण करने वाले नन्दिकेश, पतञ्जलि, व्याघ्रपाद्, वसिष्ठ आदि के उद्धार हेतु सकललोकनायकपरमेश्वर परमशिव ने ढक्कानिनाद के व्याज से चतुर्दशसूत्रस्थ तत्त्वों का उपदेश किया। जिनमें प्रथम चार सूत्र तथा अन्तिम सूत्र विशेष रूप से अध्यात्मकपरक हैं। उनमें प्रथम 'अ इ उ ण्' ब्रह्म, माया और कार्यरूप जगत् का प्रतिपादक है–

अकारो ब्रह्मरूपः स्यान्निर्गुणः सर्ववस्तुषु।
चित्कलामिं समाश्रित्य जगद्रूप उणीश्वरः।।

अः परमेश्वरो निर्गुणः इं = मायाशक्तिमाश्रित्य उः = व्यापकः सगुणः ण् = आसीत्।

अः अगोचर गुण वाला परमेश्वर **इः** चित्कला रूप माया के आश्रयण से **उः** व्यापक अर्थात् गोचर होने वाले गुणों से युक्त होकर सृष्टि का मूल कारण= आधार बन गया।

अ– 'अतति सातत्यगमनेन सर्वं जगद् व्याप्नोति' इस व्युत्पत्ति द्वारा 'अत्' धातु से औणादिक 'ड' प्रत्यय का विधान हुआ है। अथवा 'अवति पालयति सर्वं जगत्' अर्थ में रक्षणार्थक 'अव्' धातु से 'ड' प्रत्यय हुआ है।

तैत्तिरीय उपनिषद् के '**असद् वा इदमग्र आसीत् ततो सदजायत**' वचन के अनुसार सृष्टि से पूर्व वह असद् निर्गुण रूप था उसी से अक्षरात्मक सगुणरूप वाला ब्रह्म आविर्भूत हुआ। ऐतरेय आरण्यक में भी 'अ' को ब्रह्म रूप माना गया है–**अ इति ब्रह्म** (२.३.८१) श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार भी 'अ' को अक्षररूप कहा गया है– **अक्षराणामकारोऽस्मि।**

इसी प्रसङ्ग में अ के कारणब्रह्म रूप से उसके कार्य का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि –

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमेश्वरः।
आद्यमन्त्येन संयोगादहमित्येव जायते।।

अर्थात् अकार सभी वर्णों में मूर्धास्थानी है, परमप्रकाशस्वरूप तथा परमेश्वर है– **छन्दः पुरुष इति यमवोचाम, अक्षरसमाम्नाय एव।** (ऐतरेय आरण्यक ३.२.३) इस प्रकार से सर्वोत्कृष्ट यह 'अ' वर्ण अपने अन्त्य 'ह' वर्ण के साथ मिलकर 'अहम्' रूप अर्थात् अधिभूत में त्रिविध अहङ्कार तथा अधिदेव में ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप में आविर्भूत होता है।

इ– एति शक्तिरूपेण सर्वत्र अनुगता भवति। यहाँ गत्यर्थक 'इण्' धातु से कर्ता अर्थ में क्विप् प्रत्यय अथवा औणादिक 'डि' प्रत्यय का विधान है।

उ– अवति विश्वं पालयति इस व्युत्पत्ति से 'अव्' धातु से औणादिक 'डु' प्रत्यय हुआ है। यद्यपि इस व्युत्पत्ति से अ और उ दोनों 'समानार्थक हैं तथापि लक्षण आदि के द्वारा अ को निर्गुण रूप मानने में कोई दोष नहीं है।

ण् इस अध्यात्मपरक व्याख्या पक्ष में इन ण् क् आदि अनुबन्धों का कोई विशेष प्रयोजन नहीं बनता है क्योंकि ये अनुबन्ध पाणिनि आदि को ध्यान में रखकर अर्थात् व्याकरणशास्त्र की दृष्टि से उपदिष्ट हैं –

अत्र सर्वत्र सूत्रेषु अन्त्यं वर्णचतुर्दशम्।
धात्वर्थं समुपादिष्टं पाणिन्यादीष्टसिद्धये।।

तथापि काशिकाकार आदि के द्वारा 'ण्' = आसीत्, 'क' = अदर्शयत् इस तरह अनुभवप्राप्त अर्थ का ग्रहण किया जाता है। प्रकृत सूत्र के इस प्रकार के विवेचन में शिष्टवचन प्रमाण है—

अकारो ज्ञप्तिमात्रं स्यादिकारश्चित्कला स्मृता।
उकारो विष्णुरित्याहुर्व्यापकत्वान्महेश्वरः।।

अर्थात् 'अ' वर्ण शुद्ध ज्ञप्ति (ज्ञान, प्रकाश) रूप परा वाक् अर्थात् अक्षरब्रह्म है। इ वर्ण चित्कला इच्छा रूप शक्ति माया है। 'उ' वर्ण विष्णु है। वह व्यापक अक्षरब्रह्म कार्यजगत् में मिलकर उसका अधिष्ठान होकर महेश्वर अर्थात् सर्वोत्कृष्ट अधिष्ठाता 'उण्' है।

यहीं प्रसङ्गवश परब्रह्म की अभिव्यक्ति के साधनरूप वाक्चतुष्टय का भी निरूपण इस प्रकार किया गया है –

सर्वं परात्मकं पूर्वं ज्ञप्तिमात्रमिदं जगत्।
ज्ञप्तेर्बभूव पश्यन्ती मध्यमा वाक् ततः स्मृता।।
वक्त्रे विशुद्धचक्राख्ये वैखरी सा मता ततः।
सृष्ट्याविर्भावमाद्यात्म–मध्यमा–वाक् समायुतम्।।
अकारं सन्निधीकृत्य जगतां कारणत्वतः।
इकारः सर्ववर्णानां शक्तित्वात् कारणं मतम्।।
जगत् स्रष्टुमभूदिच्छा यदा ह्यासीत्तदाऽभवत्।
कामबीजमिति प्राहुर्मुनयो वेदपारगाः।।

ऋलृक्—

ऋलृक् सर्वेश्वरो मायां मनोवृत्तिमदर्शयत्।
तामेव वृत्तिमाश्रित्य जगद्रूपमजीजनत्।।

'ऋलृक्' का तात्पर्य है = सर्वेश्वर। उसने मानसिक संकल्प रूपी माया के प्रदर्शन से और उसी के आश्रय से जगत् के रूप को प्रकट किया।

ऋ– ऋच्यते स्तूयते इति आ। यहाँ स्तवनार्थक ऋच् धातु से 'ड' प्रत्यय का विधान किया गया है।

लृ– 'लाति आदत्ते प्रलयकाले सर्वं जगद् आत्मनि प्रविलापयति' इस व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ से आदानार्थक 'ला' धातु से 'डृ' प्रत्यय करके 'लृ' पद निष्पन्न है। यहाँ छान्दसदृष्टि होने से ङीप् प्रत्यय का अभाव है। इस प्रकार यहाँ 'ऋ' पद से परमात्मा तथा 'लृ' पद से उसकी मायात्मिका वृत्ति का कथन किया गया है। वृत्ति और वृत्तिमान् में किसी प्रकार का भेद न होने से अद्वैततत्त्व विद्यमान है। जैसा कि प्रसिद्ध है –

वृत्तिवृत्तिमतोरत्र भेदलेशो न विद्यते।
चन्द्रचन्द्रिकयोर्यद्वत् तथा वागर्थयोरपि।।
स्वेच्छया यस्य चिच्छक्तौ विश्वमुन्मीलयत्यसौ।
वर्णानां मध्यमं क्लीबमृलृवर्णद्वयं विदुः।।

यहाँ 'ऋ' के परमेश्वर रूप मानने में 'ऋतं सत्यम्' उपनिषद् वचन प्रमाण है। इसी प्रकार से श्रीतन्त्र के अनुसार लृकार परमात्मा का मनः स्वरूप है – **मम चाभून्मनोरूपम्'।**

एओङ्–

एओङ् मायेश्वरात्मैक्यविज्ञानं सर्ववस्तुषु।
साक्षित्वात् सर्वभूतानां स एक इति निश्चितम्।।

समस्त पदार्थों में परमेश्वर (अ) और माया (इ) विद्यमान है। जो ए ओ के रूप में जाना जाता है। **अः** अक्षरात्मक ब्रह्म **इ** = माया से संवलित होकर प्रज्ञानस्वरूप 'ए' शब्द से कहा जाता है।

'एति सर्वं जानाति' इस विग्रह में गत्यर्थक इण् धातु से विच् प्रत्यय किया गया है। इसी प्रकार से अकार तथा उकार से ओ का अर्थ स्पष्ट होता है –

तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविष्टम् इस तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार भी सृष्टि रचना करके परमात्मा उसमें प्रविष्ट हो गया।

'अइउण्' और 'ऋलृक्' से जन्य पाँच वर्ण ही समस्त सृष्टि के जनक हैं। अन्य सभी वर्णों की उत्पत्ति इन्हीं पाँचों वर्णों से होती है।

ऐऔच्– स्वात्मभूत परमेश्वर जगत् का कारण किस प्रकार है? ऐसी जिज्ञासा होने पर यह कथन किया गया है कि –

ऐऔच् ब्रह्मरूपः सन् जगत् स्वान्तर्गतं ततः।
इच्छया विस्तरं कर्तुमाविरासीन् महामुनिः।।

अर्थात् परमात्मा स्वयं में विद्यमान जगत् से विस्तार की इच्छा से ऐ = अर्थात् प्रथम वर्ण अकार माया रूप **इ** वर्ण से युक्त है। इसलिए 'अ' वर्ण के दीर्घ 'आ' और 'इ' वर्ण के दीर्घ 'ई' का ही योग 'ऐ' है अर्थात् प्रज्ञान रूप परमात्मा ही 'अ' वर्ण के दीर्घ 'आ' और 'उ' वर्ण के दीर्घ 'ऊ' के योग से 'औ' हो जाता है। यहाँ यह समझना आवश्यक है कि प्रज्ञानस्वरूप परमात्मा 'इ' रूप मायाशक्ति से मिलकर 'ऐ' है और 'औ' वह है जो उत्पत्तिकाल में 'आउ' रूप होता है।

आज संस्कृतज्ञ प्राकृत के प्रभाव में आकर ऐ औ उच्चारण करते हैं। संस्कृतकाल में यह उच्चारण ए ओ का तथा ऐ औ के उच्चारण का स्वरूप आइ आउ का मिश्रित एकाक्षर रूप था।

मध्यवर्ती सूत्र सृष्टिपरक–

ह य व र ट्, लण्– ये दोनों सूत्र सृष्टि–प्रक्रिया के विवेचक हैं। यहाँ सर्वप्रथम पूर्व में पठित 'अ' वर्ण 'इ' अर्थात् माया का आश्रय ग्रहण करके किस प्रकार से व्यापक रूप को प्राप्त करता है इस जिज्ञासा के समाधान हेतु भूतपञ्चक की सृष्टि का वर्णन इन दोनों सूत्रों में किया गया है जो कि **'तस्माद् वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः'** इस श्रुति का ही अनुगमक है –

ह – जिहते गच्छन्ति प्राणिनः यस्मिन्निति हम् आकाशम् – यहाँ ओहाङ् धातु से औणादिक 'ड' प्रत्यय का विधान है।

य– याति गच्छति इति यं वायुतत्त्वम्। यहाँ प्रापणार्थक' या धातु से 'ड' प्रत्यय हुआ है।

व – वाति निम्नं गच्छति इति वं जलम्। 'वा गतिगन्धनयोः' धातु से यहाँ 'ड' प्रत्यय किया गया है।

र – राति देवेभ्यो हव्यं ददाति इति रम् अग्नितत्त्वम्। रा दाने धातु से यहाँ 'ड' प्रत्यय किया गया है।

ल– लाति बीजानि आदत्ते इति लं पृथिवीतत्त्वम्। आदानार्थक 'ला' धातु से 'ड' प्रत्यय का विधान किया गया है।

भूतपञ्चकमेतस्माद् ह य व र ण् महेश्वरात्।
व्योमवाय्वम्बुवह्न्याख्यभूतान्यासीत् स एव हि।।
हकारं व्योमसञ्ज्ञं च यकाराद् वायुरुच्यते।
रकाराद् वह्नितोयं तु वकारादिति सैव वाक्।।
आधारभूतं भूतानामन्नादीनां च कारणम्।
अन्नाद्रेतस्ततो जीवः कारणत्वाल्लणीरितम्।।

हयवरट् रूपी परमेश्वर से जो पाँच भूत उत्पन्न हुए उनमें आकाश (ह), वायु (य), जल (व) तथा अग्नि (र) नामक तत्त्व वह परमेश्वर ही था।

भगवान् शिव के अनुसार 'ह' वर्ण से आकाश, 'य' वर्ण से वायु, र वर्ण से अग्नि और 'व' से जल की उत्पत्ति बतायी गयी है। यहाँ भूतचतुष्टय का वर्णन करने के अनन्तर आधारभूत और सबके कारण रूप पृथिवी का 'लण्' सूत्र के द्वारा अलग से कथन किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि समस्त स्थावर जङ्गम पदार्थों का आधार और अन्न आदि भोग्यों का कारण पृथ्वी है क्योंकि अन्न से शक्ति तथा उससे जीव इस प्रकार से समस्त जरायुज अण्डज स्वेदज और उद्भिज्ज आदि का प्रधान कारण होने से उसे 'लण्' सूत्रस्थ 'ल' रूप से कहा गया है। पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति के अनन्तर शब्दस्पर्शादि गुणों का कथन करने हेतु अग्रिम सूत्र का उपस्थापन किया गया है –

ञमङणनम्–

शब्दस्पर्शौ रूपरसगन्धाश्च ञमङणनम्।
व्योमादीनां गुणा ह्येते जानीयात् सर्ववस्तुषु।।

शब्द (ञ), स्पर्श (म), रूप (ङ) रस (ण) और गन्ध (न) ये आकाशादि के गुण सभी पदार्थों में समझने चाहिये।

ञ– ङूयते शब्द्यते इस विग्रह में शब्दार्थक 'ङुङ्' धातु से 'ड' प्रत्यय ङकार को चवर्गादेश ञकार की व्यवस्था पृषोदरादिगण के अन्तर्गत की गयी है।

म– मीयते त्वगिन्द्रियेण साक्षात्क्रियतेऽसौ मः स्पर्शगुणः।

ङ– ङूयते कीर्त्यते इति ङः रूपगुणः।

ण– नह्यति समवायेन सम्बध्नाति जलं पृथिवीं च योऽसौ णः रसगुणः। यहाँ बन्धनार्थक णह् धातु है। तथा पृषोदरादित्वात् णत्वविधान किया गया है।

न – नमति वायुसाहचर्येण नासिकाग्रं योऽसौ नः गन्धगुणः। यहाँ 'णमु प्रह्वत्वे' धातु से यह अर्थ निष्पन्न हुआ है।

झभञ्– घढधष्– इन दोनों ही सूत्रों से पञ्चकर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए यह कहा गया है–

वाक्पाणी झभञासीत् विराड्रूपचिदात्मनः।
सर्वजन्तुषु विज्ञेयं स्थावरादौ न विद्यते ।।
वर्गाणां तुर्यवर्णा ये कर्मेन्द्रियमया हि ते।
घ ढ ध ष् सर्वभूतानां पादपायू उपस्थकः।।
कर्मेन्द्रियगणा ह्येते जाता हि परमार्थतः।।

झभञ् अर्थात् वाक् और पाणि दोनों कर्मेन्द्रियों को चित्स्वरूप महेश्वर के समस्त जात पदार्थों में विराट् रूप समझना चाहिये। जोकि वृक्ष, मृत्पिण्ड पाषाण आदि स्थावर पदार्थों में नहीं होती है। कवर्गादि पाँचों के घ झ ढ ध रूप चतुर्थ वर्ण 'कर्मेन्द्रिय' रूप से जाने जाते हैं जो परमतत्त्व से जायमान हैं। इनकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है –

झ– झटिति मुखे वायुसंयोगेन वर्णमुत्पादयति यत्तद् झम् वागिन्द्रियम्। यहाँ सङ्घातार्थक झट् धातु से यह अर्थ निष्पन्न है।

भ– भाति ग्रहणाख्येन स्वव्यापारेण शोभते इति भम् पाणीन्द्रियम् । यहाँ दीप्त्यर्थक 'भा' धातु है।

घ – घवते शब्दायमानं सद् गच्छति पादेन्द्रियम्। यहाँ शब्दार्थक 'घुङ्' धातु है।

ढ– ढौकते मलापनयनाय गुदद्वारं गच्छति यत्तद् ढम् पाय्विन्द्रियम्। यहाँ गत्यर्थक 'ढौकृ' धातु है।

ध– दधाति गर्भधारणाय स्वव्यापारेण स्त्रियं प्रेरयति यत्तद् धम् उपस्थेन्द्रियम्। यहाँ अन्तर्भावितण्यर्थ 'डु धाञ्' धातु है।

जबगडदश् – यह सूत्र पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का प्रतिपादक है। जैसा कि प्रसिद्ध है –

श्रोत्रत्वङ्नयनघ्राणजिह्वाधीन्द्रियपञ्चकम्।
सर्वेषामपि जन्तूनामीरितं जबगडदश्।।

श्रोत्र–त्वक्–चक्षुः–घ्राण और जिह्वा रूप समस्त ज्ञानेन्द्रियां सभी प्राणियों के जबगडदश् रूप हैं। इनका विवेचन इस प्रकार है –

ज– जयति शब्दग्रहणे उत्कर्षेण वर्तते यत् तत् जम् श्रोत्रेन्द्रियम्। यहाँ जयार्थक 'जि'धातु का प्रयोग है।

ब– बदति सर्वशरीरे तिष्ठति यत्तद् बम् त्वगिन्द्रियम्। 'बद्' स्थैर्यार्थक धातु पवर्गीयादि है।

ग– गच्छति दूरस्थमपि विषयं गत्वा गृह्णाति इति गम् चक्षुरिन्द्रियम्। यहाँ गत्यर्थक 'गम्लृ' धातु से यह व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है।

ड– डयते वायुसम्बन्धेन विहासया गच्छति यत्तत् डम् प्राणेन्द्रियम् यहाँ 'डीङ्' विहायसा गतौ धातु से यह अर्थ ग्रहण किया गया है।

द– ददाति रसं गृहीत्वा भोक्त्रे समर्पयति यत्तत् दम् रसनेन्द्रियम्। यहाँ दानार्थक डु दाञ् धातु का प्रयोग है।

ख फ छ ठ थ च ट त व् – यह सूत्र प्राणादिपञ्चक तथा मन बुद्धि अहङ्कार से सम्बन्धित सृष्टि का विवेचन करने वाला है जो कि पञ्चदशी आदि वेदान्तग्रन्थ में विशेष रूप से वर्णित है।

प्राणादि पञ्चकं चैव मनोबुद्धिरहङ्कृतिः।
बभूव कारणत्वेन ख फ छ ठ थ च ट त व्।।

ख– खनति मुखमीषद् विवारयति वर्णोच्चारणाय इति खः प्राणवायुः। यहाँ अवदारणार्थक 'खनु' धातु लभ्य यह अर्थ है।

फ– फक्कति मलादिनिःसारणाय नीचैर्गच्छति योऽसौ फः अपानवायुः। 'फक्क नीचैर्गतौ' धातुलभ्य यह अर्थ है।

छ– छयति नाभिमाश्रित्य भुक्तस्यान्नजलादेः समानत्वापादनेन पार्थक्यं निवारयति योऽसौ छः समानवायुः। 'छो छेदने' धातु से निष्पन्न यह अर्थ है।

ठ– टलति टालयति भुक्तस्यान्नादेरुद्गारार्थं निरासयति योऽसौ ठः उदानवायुः। यहाँ वैक्लव्यार्थक टल् टुलधातु से पृषोदरादिगण से ट को ठ आदेश किया गया है।

थ– तिष्ठति सर्वशरीरे रसरुधिरादीनां वितननाय योऽसौ थः व्यानवायुः। यहाँ स्था (ष्ठा) गतिनिवृत्तौ धातुलभ्य यह अर्थ है तथा पृषोदरादित्वात् सलोप हुआ है।

च– चिनोति सङ्कल्पविकल्पात्मकं कर्म इति चं मनः। यहाँ चयनार्थक 'चि' धातु का प्रयोग है।

ट – टङ्कति देहादौ तादात्म्याध्याससम्पादनेन जीवं बध्नाति इति टम् बुद्धितत्त्वम्। यहाँ गत्यर्थक 'टकि ' धातु से यह अर्थ निष्पन्न किया गया है।

त– तनोति विस्तारयति शरीरादिष्वहन्ताध्यासापादनेन बुद्ध्यापादितां चिज्जडशक्तिं योऽसौ 'तः' अहङ्कारः। यहाँ विस्तारार्थक 'तनु' धातु का प्रयोग है। इसे इस तरह से भी स्पष्ट किया गया है–

वर्गद्वितीयवर्गोत्था प्राणाद्याः पञ्च वायवः।
मध्यवर्गत्रयाज्जाता अन्तःकरणवृत्तयः।।

कपय्– यह सूत्र जगत् के कारणभूत प्रकृति और पुरुष के स्वरूप का प्रतिपादक है जो इस प्रकार है–

प्रकृतिं पुरुषं चैव सर्वेषामेव सम्मतम्।
सम्भूतमिति विज्ञेयं क प य् स्यादिति निश्चितम्।।

क– कचते जगत् बध्नाति इति 'कं' प्रकृतितत्त्वम्। यहाँ बन्धनार्थक 'कच्' धातु अथवा दीप्त्यर्थक कचि धातु से निष्पद्यमान 'क' का अर्थ है – जगद् रूप से प्रकृति का प्रकाशक।

प– पाति विश्वमिति 'पः' पुरुषः। यहाँ रक्षणार्थक 'पा' धातु से निष्पन्न यह अर्थ है।

शषसर् – यह सूत्र सत्त्व, रज और तम रूप तीनों गुणों का प्रतिपादक है। परमेश्वर गुणत्रयात्मिका रूपा अपनी प्रकृति से युक्त होकर समस्त प्राणियों में रमण करता है –

सत्त्वं रजस्तम इति गुणानां त्रितयं पुरा।
समाश्रित्य महादेवः श ष स र् क्रीडति प्रभुः।।

श– शक्नोति मनुष्यदेहादिकार्यं कर्तुं योऽसौ शः रजोगुणः। शक्त्यर्थक 'शक्लृ' धातु से यहाँ 'ड' प्रत्यय हुआ है।

ष – स्यति अन्तं करोति इति षः तमोगुणः। 'षो अन्तकर्मणि' धातु से यह अर्थ निष्पन्न किया गया है। अथवा सायति क्षयं करोति इति षः। यहाँ 'षै क्षये' धातु से पृषोदरादि व्यवस्था से षत्व हुआ है।

स– सीदन्ति तिष्ठन्त्यस्मिन् ज्ञानवैराग्यप्रभृतयो धर्मा इति सः सत्त्वगुणः। विशरण आदि अर्थों में प्रसिद्ध 'षद्लृ' धातु से यह अर्थ निष्पन्न है। जैसा कि प्रसिद्ध है –

शकाराद्राजसोद्भूतिः षकारात्तामसोद्भवः।
सकारात् सत्त्वसम्भूतिरिति त्रिगुणसम्भवः।।

हल्–यह सूत्र भी अध्यात्मपरक है जिसका विवेचन इस प्रकार है–

ह– हन्ति अविद्यामिति हः शम्भुः। 'हन् हिंसागत्योः' दृष्टि से यह धातु हिंसा और गति उभयार्थक है। जिसमें यह प्रथम अर्थग्रहण किया गया है। द्वितीय अर्थ की दृष्टि से– हन्ति सर्वत्र गच्छति जानातीति हः।

इस तरह ढक्कानिनाद के व्याज से सनक आदि मुनियों के कल्याण हेतु तत्त्वों का उपदेश करते हुए आद्य अकार और अन्त्य हकार तथा बिन्दु से भी इसका व्यवस्थापन करके 'अहमेव यूयम्' रूप से उपदेश करके परमेश्वर शिव अन्तर्ध्यान हो गये –

तत्त्वातीतः परः साक्षी सर्वानुग्रहविग्रहः।
अहमात्मा परो हल् स्यादिति शम्भुस्तिरोदधे।।

यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि इस प्रकार के अनिर्वचनीय महत्त्वाधायक चतुर्दशसूत्री का क्या परिणाम उद्भूत हुआ? तो इसका समाधान यह है कि सनकादि ब्रह्मर्षि इस चतुर्दश सूत्री द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करके जीवन्मुक्त हो गये। जैसा कि श्रीमद्भागवत का भी वचन है –

पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः।

दूसरा फल ऐहलौकिक होकर भी महनीय है जो महामुनि पाणिनि केअन्तःकरण में अष्टाध्यायी रूप है, जिस अष्टाध्यायी के उदित होने पर अन्य सभी व्याकरणसम्प्रदाय उसी प्रकार से विलुप्त हो गये जिस प्रकार से सूर्य के उदित होने पर उडुगण विलुप्त हो जाते हैं। इस अष्टाध्यायी का अध्ययन करके पाश्चात्यविद्वान् भी मुक्तकण्ठ से ऊँचे स्वर में यह उद्घोषणा करते हैं कि **यह अष्टाध्यायी मानवमस्तिष्क का चरम आदर्श है–**

पाणिनिर्भगवानेव स्वयं चन्द्रार्धशेखरः।
प्रतिष्ठापयते कोऽन्यो दिव्यं व्याकरणं भुवि।।

फलतः –

पाणिनीयं महाशास्त्रं पदसाधुत्वलक्षणम्।
सर्वोपकारकं ग्राह्यं कृत्स्नं त्याज्यं न किञ्चन।।

जगन्मान्य महर्षि पतञ्जलि भी इस अक्षरसमाम्नायसंवलित अष्टाध्यायी का स्तवन करते हुए कहते हैं – **सोऽयमक्षरसमाम्नायो वाक्समाम्नायः पुष्पितः फलितश्चन्द्रतारकवत् प्रतिमण्डितो वेदितव्यो ब्रह्मराशिः।** यहाँ पुष्पितः फलितः होने का तात्पर्य है शब्द का साधुत्वसम्पादन करके उसके प्रयोग से पुण्य–धर्म इष्ट की प्राप्ति।

महर्षि पाणिनि प्रणीत तीन हजार नौ सौ छानवे सूत्रों वाली 'अष्टाध्यायी' रूपी गागर में अत्यधिक कुशलतापूर्वक शब्दों का व्यवस्थापन किया गया है। जिसके सम्बन्ध में भगवान् पतञ्जलि बार–बार यह कहते हैं कि – **'सामर्थ्ययोगान्नहि किञ्चिदस्मिन् पश्यामि शास्त्रे यदनर्थकं स्यात्'। 'तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितव्यम्'।**

फलतः जिस प्रकार से श्रीमद्भगवद्गीता के अन्त में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति 'मन्मना भव मद्भक्तो' तथा 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' कथन करके उनसे भिन्न–भिन्न काल में कर्मयोग और कर्मसंन्यास दोनों का पालन करवाया उसी प्रकार चतुर्दशसूत्री द्वारा अधिकारिभेद से व्याकरण का प्रणयन और अध्यात्मतत्त्व का प्रतिपादन– यह दोनों ही कालभेद से सम्पन्न हुआ। शब्दतत्त्ववेत्ता भगवान् पाणिनि को भी व्याकरणशास्त्र के इस महान् ग्रन्थ के प्रणयन के पश्चात् निश्चित रूप से शब्दब्रह्म का साक्षात्कार हुआ होगा इस दृष्टि से कालभेद से पाणिनि के लिए दोनों ही भावों की संगति उचित प्रतीत होती है –

शाब्दे ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति।